यौगिक षट्कर्म

योगी आदित्य नाथ
श्री गोरक्षनाथ मन्दिर, गोरखपुर

40=00

श्री गोरक्षनाथ मन्दिर
गोरखपुर

महन्त अवेद्यनाथ

प्राक्कथन

योग साधना में, विशेषत: हठयोग साधना में कायशोधन या घट शुद्धि अर्थात् शरीर-शुद्धि के संदर्भ में षट्कर्मों का बड़ा महत्त्व है। मनुष्य शरीर कफ, वात और पित्त नामक तीन धातुओं के सम्मिश्रण से निर्मित है। आहार-विहार, आचार-विचार तथा देश-काल आदि के प्रभाव से उत्पन्न कफ, वात आदि धातुओं के असंतुलन के कारण शरीर विकारग्रस्त होकर योग-साधना के योग्य नहीं रह जाता है। शरीर की नाड़ियों में भी कफ, वात या पित्त के प्रकोप से तरह-तरह के मल एकत्र हो जाते हैं। इन सबके कारण शरीर के अन्दर विद्यमान मन और प्राण भी प्रभावित होते हैं और जब मन और प्राण ही विकारग्रस्त या मालिन्ययुक्त हो तो फिर योग-साधना की युक्ति ही संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में जैसे आयुर्विज्ञान में पंच-कर्म द्वारा शरीर को शुद्ध और स्वस्थ बनाया जाता है वैसे ही योग-विज्ञान में भी धौति, वस्ति आदि षट्-कर्मों से शरीर को शुद्ध कर साधना योग्य बनाया जाता है। इसलिए योग-ग्रन्थों में शरीर-शुद्धि के जिन सात साधनों का वर्णन मिलता है उनमें शोधन क्रिया षट्कर्मो द्वारा ही सम्पादित की जाती है। यद्यपि यह विषय वैचारिक नहीं है और

अच्छे-गुरु के मार्गदर्शन में क्रियात्मक अभ्यास द्वारा ही सही ढंग से समझा जा सकता है तथापि प्रस्तुत पुस्तक के लेखक योगी आदित्यनाथ ने संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित शब्दों में सरल शैली में इस गूढ़ विषय का उपस्थित करने का अत्यन्त सराहनीय प्रयास किया है जिससे सम्पूर्ण विषयवस्तु सहज बोधगम्य हो गयी है।

जबसे काया-चिकित्सा में योग के विभिन्न अंगों को सम्मिलित कर चमत्कारिक योग-थिरेपी को विश्व-स्तर पर उत्तरोत्तर मान्यता और लोकप्रियता मिलती जा रही है तबसे मन और प्राण को नियंत्रित कर योग से आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करने के लिए अग्रसर साधकों के अलावा भौतिक जीवन में अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य प्राप्त करने के लिए लालायित सामान्य जनों की भी रुचि और जिज्ञासा बहुत बढ़ी है। निश्चय ही षट्कर्मों की सम्यक् साधना से कफ, वात और पित्त से उत्पन्न होने वाले विकार आसानी से दूर होते हैं और नाड़ियाँ भी शुद्ध होकर रक्त संचार को निर्बाध रखने में समर्थ होती हैं जिससे नैरूज्य और आयुष्य दोनों का लाभ होता है।

प्रस्तुत पुस्तक ने यदि साधकों और जिज्ञासुओं को आकर्षित कर कुछ भी लाभ पहुँचाया तो इसका प्रकाशन सार्थक हो जायेगा। मुझे विश्वास है कि आध्यात्मिक और भौतिक दोनों क्षेत्रों के जिज्ञासु इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

बुद्ध पूर्णिमा
श्री गोरक्ष जयन्ती
सं० २०५६ वि०

महन्त अवेद्यनाथ
गोरक्षपीठाधीश्वर
श्री गोरक्षनाथ मंदिर, गोरखपुर

कायशोधन और यौगिक षट्कर्म

प्रकृति और स्वास्थ्य का अति सन्निकट का सम्बन्ध है। उत्तम स्वास्थ्य प्रकृति की गोद में ही प्राप्त हो सकता है। मूल प्रकृति त्रिगुणात्मक होने से प्राणि मात्र के शरीर भी वात, पित्त, कफ इन त्रिधातुओं के नाना प्रकार के रूपान्तरों के सम्मिश्रण है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा वात, पित्त, कफ से की गई है।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यमिधीयते।।

अर्थात् वात, पित्त और कफ सन्तुलित हो, शरीरगत अग्नि सम हो, सप्त धातु और मल-निष्कासन आदि क्रिया सम अवस्था में हो तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन व आत्मा प्रसन्न हो तब ही मनुष्य स्वस्थ है, ऐसा माना जाता है।

कुछ शरीर वात प्रधान, कुछ पित्त प्रधान कुछ कफ प्रधान होते हैं। वात प्रधान शरीरों में आहार-विहार के दोष से तथा देशकालादि हेतु से प्रायः वातवृद्धि हो जाती है, पित्त प्रधान शरीरों में पित्त विकृति और कफ प्रधान शरीरों में प्रायः कफ प्रकोप हो जाता है, जिससे दूषित श्लेष्मा, आमवृद्धि या मेद का संग्रह हो जाता है जबकि शरीर में वात, पित्त कफ क्रम सं 4:2:1 के अनुपात में हो तभी सम अवस्था मानी जाती है। इस अनुपात में जब भी असन्तुलन होता है तब शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है। इन विकारों को रोकने के लिये तथा देह को पूर्ववत स्वस्थ बनाने के लिये जैसे आयुर्वेद में स्नेहन, स्वेदन के अतिरिक्त वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य, अनुवासन ये पंच कर्म बताये गये हैं, वैसे ही हठयोग के प्रवर्तक ऋषि-महर्षियों ने शरीर की शुद्धि के लिये सात साधन बताये हैं जो इस प्रकार हैं-

शोधनं दृढ़ता चैव स्थैर्य धैर्य च लाघवम्।

प्रत्यक्षं निर्लिप्तं च घटस्थं सप्त साधनम्।।

अर्थात शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्त ये सात साधन शरीर शुद्धि के लिये बताये गये हैं।

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद् दृढ़म्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि।
समाधिना च निर्लिप्तं युक्तिरेव न संशयः।।

अर्थात् शोधन के लिए षट्कर्म, दृढ़ता के लिये आसनों का अभ्यास, स्थैर्य के लिये मुद्रायें, धैर्य के लिये प्रत्याहार, लाघव के लिये प्राणायाम, ध्येय के प्रत्यक्ष दर्शनार्थ ध्यान और निर्लिप्तता (आसक्ति-हीनता) के लिये समाधि, इस क्रम से अभ्यास करने पर अवश्य ही योग सिद्धि होती है, इसमें संशय नहीं है।

शरीर के मलों व विषाक्त तत्त्वों को दूर करने की क्रिया को शरीर-शोधन कहते हैं। शरीर शोधन अथवा शुद्धिकरण हठयोग में छः प्रकार से किया जाता है, जिन्हें षट्कर्म कहते हैं। गोरक्ष संहिता के अनुसार-

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिनौलिकिस्त्राटकस्तथा।
कपालभातिश्चैताति षट्कर्माणि समाचरेत्।।

अर्थात् योग के लिए धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति इन षट्कर्मों का अभ्यास करना चाहिए।

षट्कर्म की इन क्रियाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के कफ, वात और पित्तगत दोषों को कुष्ठ, प्लीहा, फेफड़े तथा उदर आदि के आभ्यान्तरिक विकारों को दूर कर शरीर को पुर्ण रूप से नीरोग रखा जा सकता है। इस कार्यशोधन से शरीर स्वस्थ रहता है और उसमें सभी नाड़ियाँ मलरहित होती हैं। इस प्रकार षट्कर्मों की उपयोगिता केवल शरीर शोधन में नहीं अपितु शोधित शरीर से किये गये योगाभ्यास से कुण्डलिनी जागरण तथा षट्चक्रभेदन पूर्वक शिवशक्ति के समरसीकरण की अभीष्ट सिद्धि में भी है। अतः इनका क्रमशः विस्तृत निरूपण आवश्यक है।

(1) धौति

धौति शब्द का अर्थ है- धोना या साफ करना। योग शास्त्र में षट्कर्मों के अन्तर्गत मुंह से लेकर गुदा द्वार तक विधिवत आन्तरिक सफाई करना धौति क्रिया कहलाती है। काया शोधन की यह एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। मुख्य रूप से धौति कर्म चार प्रकार का माना गया है। यथा-

अन्तर्धौतिर्दन्त धौतिर्हृदधौतिर्मूलशोधनम्।

धौतिंश्चतुर्विधा कृत्वाघटं कुर्वन्ति निर्मलम्।।

अन्तर्धौति, दन्त धौति, हृदयधौति और मूल शोधन के भेद से धौति कर्म चार प्रकार का है। इसके द्वारा योगिजन अपने शरीर को स्वच्छ (स्वस्थ) बनाते हैं। इससे अपच, मलावरोध, अतिसार, संग्रहणी आदि विकार तो दूर होते ही हैं, साथ ही उदरस्थ फोड़ा तक को धौति कर्म से ठीक किया जा सकता है। इन चारों के विवरण इस प्रकार हैं-

(क) अन्तर्धौति- इस का शाब्दिक अर्थ है भीतर की सफाई। अत: जिस धौति से शरीर के भीतर प्रक्षालन किया जाता है उसे अन्तर्धौति कहते हैं। इसके भी चार प्रकार हैं। यथा-

वातसारं वारिसारं वह्निसारं बहिस्कृतम्।

घटस्य निर्मलतार्थम् अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा।।

अर्थात्- वातसार, वारिसार, वहिन्सार और बहिष्कृत भेद से अन्तर्धौति चार प्रकार की होती है।

1. वातसार अन्तर्धौति - इसमें सिद्धासन, पद्मासन या वज्रासन में बैठ कर दोनो होठों को कौवे की चोंच की तरह करके धीरे-धीरे पेट में वायु भरते हैं। वायुपान करने के बाद कुम्भक (श्वास रोकने की क्रिया) की स्थिति में पेट के अन्दर की वायु का चारों ओर संचालन करते हैं। उसके पश्चात् धीरे-धीरे नासिका से उस वायु को निकाल देते हैं। अन्दर की वायु को चलाने से संबंधित होने के कारण इसे वातसार अन्तर्धौति कहते हैं। इस क्रिया को काकी-मुद्रा या काकी-प्राणायाम भी कहते हैं।

लाभ- यह क्रिया-

(क) जठराग्नि को प्रदीप्त करके क्षुधा-वृद्धि कर, मंदाग्नि आदि को दूर करती है।

(ख) शरीर को सब रोगों से रहित करके स्वस्थ बनाती है।

(ग) मुंह, जीभ, टान्सिल आदि गले के रोगों में लाभदायक है।

(घ) इस क्रिया के सिद्ध होने पर दूर-श्रवण, दूर-दर्शन और आत्मदर्शन की शक्ति प्राप्त होती है।

वारिसार अन्तर्धौति

वारि अर्थात् जल सार अर्थात् चलाना। इस प्रकार मुंह से धीरे-धीरे जल पीने, उसे परिचालित करके जल को गुदा द्वार से बाहर निकालने की क्रिया को वारिसार अन्तर्धौति कहते हैं। इससे आँतों की सफाई होती है। यह शंख धौति का एक प्रमुख अंग है।

शंख-धौति अथवा शंख-प्रक्षालन

आँतों को पूर्ण रूप से जिस क्रिया से स्वच्छ किया जाता है, उसे शंख-धौति अथवा शंख-प्रक्षालन कहते हैं। इस क्रिया से मुंह से लेकर गुदा तक शरीर की विधिवत् सफाई-धुलाई होती है। चूँकि आँतों की आकृति शंखनुमा होती है इसलिये आँतों को शंख भी कहा जाता है। अत: इस क्रिया से आँतों की सफाई को शंख-धौति अथवा शंख-प्रक्षालन भी कहते हैं। यह काया-कल्प की एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। शरीर-शोधन एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिये इस क्रिया के चमत्कारिक प्रभाव व लाभ प्राप्त हुए हैं। एक प्रकार से यह शरीर रूपी मशीन की सर्विसिंग तथा ओवरहालिंग जैसी क्रिया है जो उस मशीन को नवजीवन प्रदान करती है। इस क्रिया के सम्बन्ध में महायोगी गुरू गोरक्षनाथजी ने कहा है-

आहार तोड़ै निद्रा मोड़ै कबहुँ न होइबा रोगी।

छठै छमासै काया पलटिबा ज्यूँ कोइ बिरला बिजोगी।।

मिताहार, यथोचित निद्रा और छ:छ: माह के अन्तर में काया-कल्प के द्वारा शरीर को नीरोग रखते हुये योगी अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त करता है।

साँस उसाँस बाइ को भषिबा, रोकि लेहु नव द्वारं।
छठै छमासे काया पलटिबा, तब उनमनी जोग अपारं।।

कुम्भक प्राणायाम के द्वारा शरीर के भीतर श्वासोच्छवास का भक्षण करना चाहिए। इस कार्य में जितनी अधिक सफलता मिलेगी, उतनी ही प्राणशक्ति अक्षुण्ण होती जायेगी और मृत्यु का भय दूर होता जायेगा। नवों द्वारों को रोक कर वायु को शरीर में पचा लेने से काया-कल्प तो अनायास हो ही जाता है, और साथ ही साथ साल भर में दो बार, छः छः माह की अवधि में योगिक विधि से काया-कल्प करने से शरीर में परिष्कृत ऊर्जस्वल प्राण दौड़ने लगता है। इससे उन्मनी-योग सिद्ध होता है। मन स्थिर हो जाता है, ब्रह्मरन्ध्र-दशवें द्वार-के खुल जाने पर निष्कल, निरंजन, चिन्मय, परमात्मतत्त्व प्रकाशित हो उठता है। इस तरह उन्मनी अवस्था सिद्ध होती है।

अस्तु जिस दिन शंख-प्रक्षालन करना हो उसके पहले दिन रात्रि में हल्का सुपाच्य भोजन ही लेना चाहिए। रात्रि में पीने के लिये जल का अधिक से अधिक प्रयोग करें। सुबह सूर्योदय से पूर्व नित्य-क्रिया से निवृत्त होने के बाद एक गिलास नमकीन गरम पानी पी कर 5-5 बार निम्नलिखित आसनों का अभ्यास करें-

1. **ताड़ासन**- दोनों पैर मिलाकर खड़े हो जाइए, दोनो हाथ की अँगुलियों को आपस में फँसा कर हथेली को सिर की सीध में ऊपर रखिए। श्वास अन्दर लेते हुए पंजे के बल खड़े हो जाइए तथा हथेली को उल्टा कर के यानी आसमान की ओर रखते हुए पूरे शरीर को ऊपर की ओर तानें। दृष्टि सामने रखें तथा श्वास अन्दर रोक कर (जितनी देर हो सके) फिर श्वास छोड़ते हुए वापस आ जावें। ताड़ वृक्ष की सी स्थिति के कारण इसे ताड़ासन कहते हैं।

3. **तिर्यक् ताड़ासन**- दोनो पैरों के मध्य एक से डेढ़ फुट का फासला रखते हुए दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस मे फँसा कर हथेली को सिर के ऊपर सीधा ऊपर उठा कर खड़े हो जाइए। कमर के ऊपर के हिस्से (धड़) को दायीं तरफ झुकायें, फिर पूर्व अवस्था में आकर बायीं ओर इसी प्रकार झुकाइये, हाथ सीधा रखें. मोड़ें नहीं।

3. **कटिचक्रासन** - दोनों हाथों को सामने सीधे बाजू से फैला कर दोनों

पैरो के मध्य $1\frac{1}{2}$-2 फुट का फासला रखते हुए खड़े हो जाइए। सर्वप्रथम दाहिने हाथ को सामने से घुमाते हुए बायें कंधे पर रखें और उसी वक्त बायें हाथ को पीछे कमर से घुमाते हुए दाहिनी जाँघ तक ले आयें, सिर को बायें कंधे की ओर ले जाकर कंधे के ऊपर से दाहिने पैर की एँड़ी को देखें। इसी तरह वापस पूर्व स्थिति में आकर दूसरी ओर से भी यही क्रिया करें।

4. **तिर्यक् भुजंगासन-** पेट के बल लेट कर दोनों हथेलियों को अपने दोनों बगल में छाती के समकक्ष रखें। दोनों कोहनियाँ पीठ से लगी हुई हों, सिर जमीन पर रहे, दोनों पैरों के बीच डेढ़ से दो फुट की जगह हो तथा पंजा जमीन से सुलाकर रखें। श्वास लेते हुए धीरे-धीरे नाभि से ऊपर गर्दन, छाती व सिर को जमीन से ऊपर उठा कर सिर को बायें कन्धे की ओर मोड़ कर दाहिनें पैर की एँड़ी को देखने का प्रयत्न करें। सिर को पूर्व की स्थिति में लाकर श्वास छोड़ते हुए सामान्य स्थिति में आ जायें। पुन: इस क्रिया को दूसरी ओर से करें।

5. **उदराकर्षणासन-** ऐसे बैठें कि दोनों पैरों के बीच कुछ फासला रहे। फिर दोनों हाथ घुटने पर रखें तथा बायीं एँड़ी को उठाते हुए घुटने को दाहिनें पंजे के पास तक लायें और कंधे के ऊपर से पीछे की ओर देखने की चेष्टा करें। यही क्रिया स्थिति बदल कर भी करें।

हर 5-5 बार अभ्यास के बाद 1-2 गिलास हल्का गरम नमकीन जल पी लें। लगभग 2 लीटर गरम नमकीन जल पी लेने पर अभ्यास के बाद शौच अवश्य जायें। उसके बाद पुन: हल्का गरम नमकीन जल पीकर अभ्यास जारी रखें। 3-4 लीटर जल पी लेने पर शौच की जरुरत महसूस होगी। शौच भी पहले सूखी, फिर गीली, फिर पतली तत् पश्चात् कणयुक्त जलीय और अन्त में जल के समान साफ होने लगेगी। नमकीन गरम जल का अभ्यास तब तक जारी रखना चाहिए, जब तक शौच पानी की तरह नहीं आने लग जाय। इसके बाद 5-7 गिलास साफ गरम जल पीकर कुंजर क्रिया कर लेनी चाहिए। तत् पश्चात् एक घण्टे तक कुछ भी सेवन न करें। एक घण्टे के बाद शुद्ध देशी घी में पकाई हुई मूंग की दाल की खिचड़ी का सेवन स्वेच्छानुसार करें। लगभग 3-4 घण्टे पूरी तरह आराम करने के बाद अन्न-जल का सेवन करें। 3-4 घण्टे तक सोयें भी नहीं। लगभग एक सप्ताह गरिष्ठ भोजन (भारी भोजन), चाय तथा नशीले मादक पदार्थों का भी सेवन नहीं करना चाहिए।

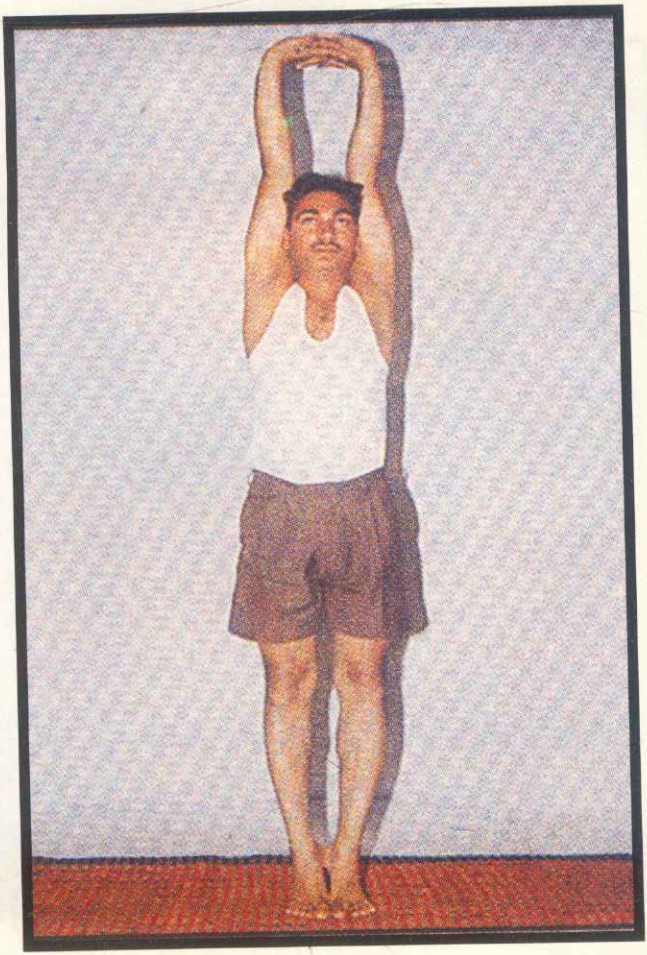

ताड़ासन

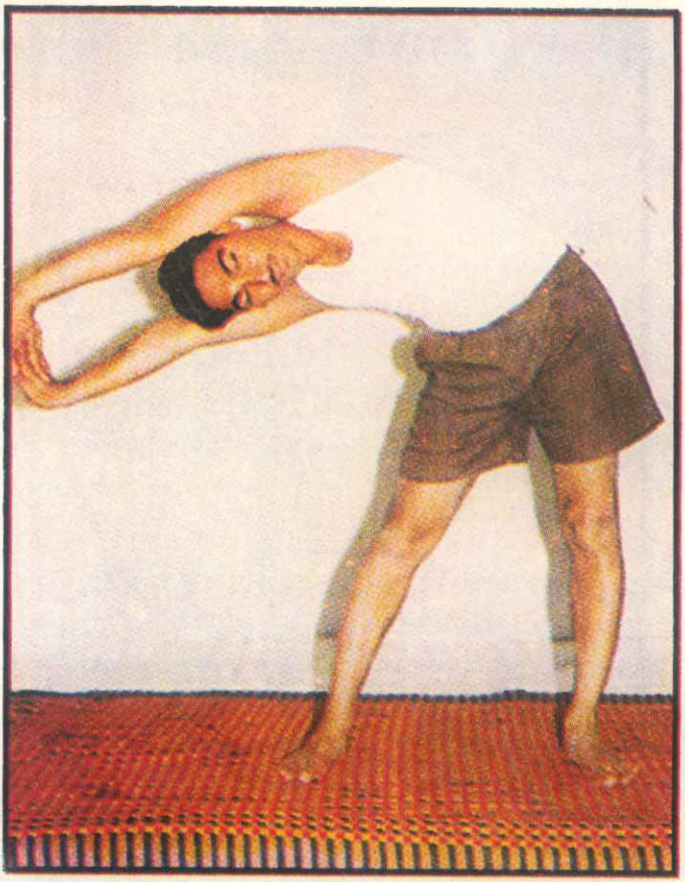

तिर्यक् ताड़ासन

कटिचक्रासन

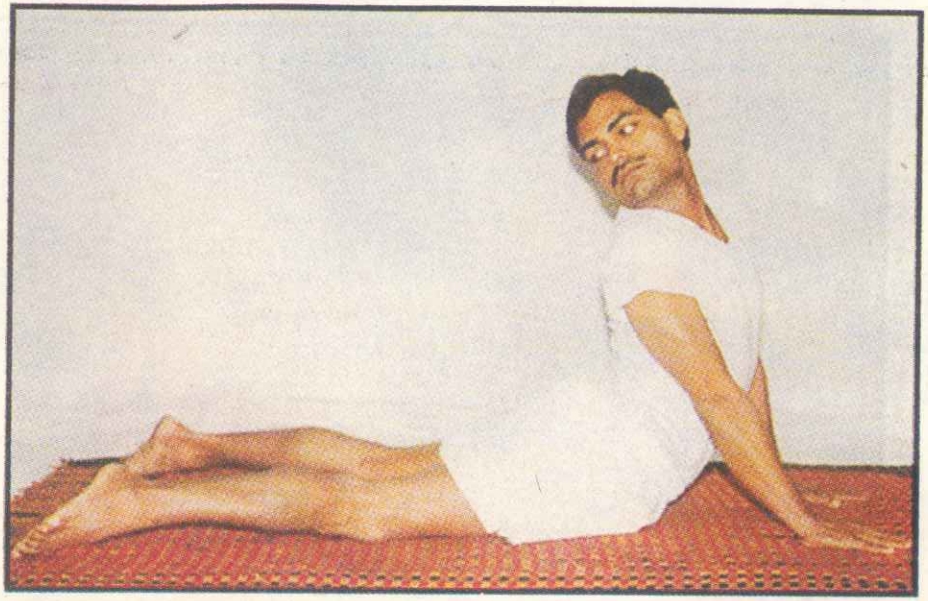

तिर्यक भुजंगासन

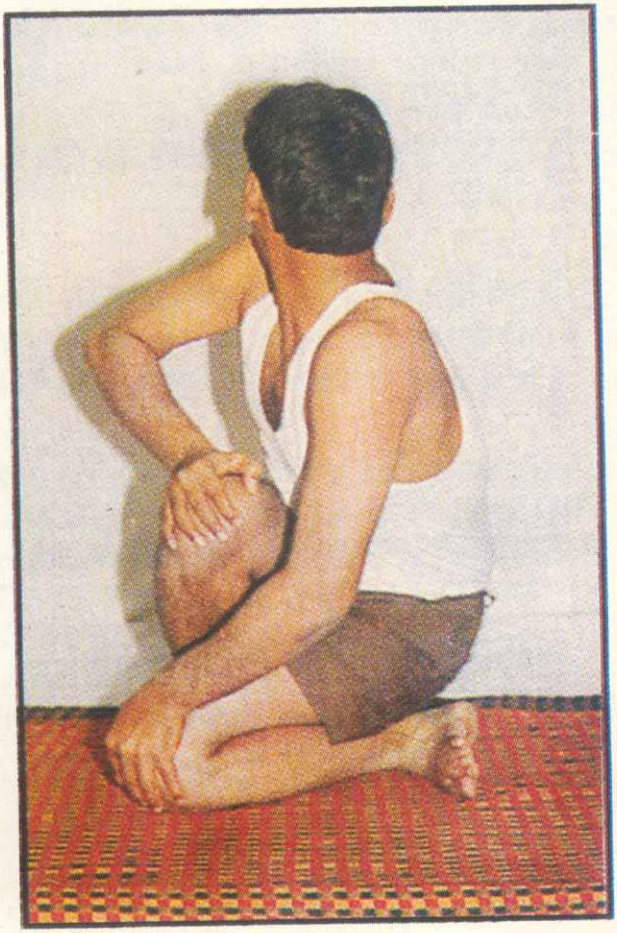

उदराकर्षासन

लाभ - यह क्रिया -

1. शरीर-शोधन की उत्तम क्रिया है और सभी प्रकार के रोग दूर करने में सक्षम है।
2. कब्ज, मंदाग्नि को दूर कर आँतों के साथ मांस पेशियों को भी सक्रिय एवं मजबूत बनाती है।
3. रक्त के शुद्धीकरण में सहायक है।
4. मधुमेह, श्वास रोग, अपेन्डिसाइटिस, सिरदर्द, मुख, आँख, गला, जिह्वा और दन्त रोगों में लाभकारी है।

विशेष -

1. सामान्यजनों को तीन या छः माह में एक बार इसका अवश्य अभ्यास करना चाहिए।
2. मधुमेह के रोगियों को पन्द्रह दिन में एक बार इसका अभ्यास करना चाहिए।
3. कुष्ठ रोगियों को सप्ताह में दो दिन इसका अभ्यास करना चाहिए।
4. बहुत कमजोर व्यक्ति, प्रसूता महिला, गुर्दे, अल्सर, ऊँचे या नीचे रक्तचाप तथा हृदय के रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

वह्निसार अन्तर्धौति (अग्निसार धौति)

वज्रासन में बैठकर अथवा थोड़ा सामने झुके हुए खड़े होकर प्राण वायु को रोककर नाभि प्रदेश का आंकुचन प्रसारण तेजी से करें। इससे सभी उदर रोग नष्ट होते हैं और जठराग्नि तीव्र होती है।

बहिष्कृत अन्तर्धौति

यह क्रिया वातसार अन्तर्धौति के समान ही है। इसमें कौवे की चोंच की तरह मुख बनाकर इतनी मात्रा में वायु पीते जायें की पेट पूरी तरह भर जाये, फिर अन्तर्कुम्भक द्वारा यथा सामर्थ्य वायु को पेट में ही धारण करके रखें, पश्चात् इसे गुदा से बाहर निकालना चाहिए। इससे नाड़ियों का शुद्धीकरण होता है।

सावधानी-

1. यह क्रिया कठिन है, तथा ठीक से अभ्यास न होने पर वायु कुपित होने की अधिक सम्भावना होती है। इसलिए किसी जानकार के निर्देशन में ही करें।
2. इस क्रिया के अभ्यास में अन्तर्कुम्भक के साथ जालन्धर बन्ध अवश्य लगायें।

दन्त धौति

मुख के अन्दर या बाहर के भागों को धोकर साफ व स्वस्थ रखने की क्रिया को दन्तधौति कहते है। यह पाँच प्रकार की होती है-

दन्तमूलं जिह्वामूलं रन्ध्रं च कर्णयुग्मयो:।
कपालरन्ध्रं पंचैते: दन्तधौतिर्विधीयते ।।

अर्थात्- दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र (दोनों कानों के रन्ध्रों से होने वाली दो धौति है) तथा कपाल रन्ध्र इन पाँचों से दन्तधौति होती है।

1. **दन्तमूलधौति-** इसमे प्रतिदिन प्रात: एवं सायंकाल नीम की टहनी से दाँतो की सफाई तथा हाथ की तर्जनी अँगुली से मसूढ़ों को खूब रगड़ते हैं (सभी प्रकार के दन्त रोग, पाइरिया आदि में लाभ होता है) अथवा सेन्धा नमक व सरसो का तेल मिलाकर दाँत एवं मसूढ़ों की मालिश दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली से खूब रगड़ते हुए करनी चाहिए, उसके बाद गाय के मक्खन से बार-बार जिह्वा का मार्जन तथा दोहन करना चाहिए।

लाभ : इस से-

1. कफ-दोष का निवारण होता है।
2. जिह्वा का दोहन करने से वाक्शक्ति तथा स्वादशक्ति की क्षमता बढ़ती है।

3. **कर्णरन्ध्र-धौति-** दोंनों हाथों की तर्जनी अथवा अनामिका अंगुलियों से दोनो कानों के छिद्रों की मालिश व सफाई करना कर्णरन्ध्रधौति कहलाती है।

लाभ: इस से-

श्रवण शक्ति बढ़ती है तथा इस से शरीर में व्याप्त नाद की साधना करने में सुगमता रहती है।

4. कपालरन्ध्र-धौति- दाहिने हाथ के अँगूठे या अँगुली से खोपड़ी के मध्य में कपालरन्ध्र की जल या किसी विशिष्ट तेल से मालिस करने की क्रिया कपालरन्ध्र धौति कहलाती है। यह क्रिया मध्याह्न काल तथा सायंकाल में होती है।

लाभ: इस क्रिया से-

1. कफ-दोष का निवारण होता है।
2. शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की पवित्रता प्राप्त होती है।

हृद्धौति

हृदय का शोधन जिस क्रिया से होता है उसे हृद् या हृदयधौति कहते हैं। मानसिक शुद्धि के लिये हृदय की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना न तो योगसाधना हो सकती है और न ही तृष्णा, ममता और वासना के बन्धन से छुटकारा मिल सकता है। हृदय में साक्षात् विष्णु का निवास बताया गया है। इसके शोधन की मुख्य तीन क्रियायें हैं-

"हृद्धौतिं त्रिविधं कुर्याद् दण्डवमन वाससा"। अर्थात् दण्ड आदि तीन साधनों के कारण हृदय धौति के तीन भेद हैं- दण्डधौति, वमनधौति और वसनधौति।

1. दण्डधौति- केले के दण्ड, चिकने बेंत के दण्ड, हल्दी अथवा वटवृक्ष की जटा जिसकी मोटाई १ सेमी० तथा लम्बाई लगभग २ फुट तक हो- को अन्न की नली के रास्ते धीरे-धीरे हृदयस्थल तक प्रविष्ट कर थोड़ी देर सावधानी से दण्ड को चारों ओर घुमा कर धीरे-धीरे ही बाहर निकालने की क्रिया दण्ड-धौति अर्थात् दण्ड से हृदय की सफाई कहलाती है। दण्ड यदि मुलायम न हो तो उसमें गाय का मक्खन अवश्य लगा लेना चाहिए। यह क्रिया भोजन से पूर्व ही करनी चाहिए।

लाभ- **इस क्रिया से-**

1. कफ और पित्त आदि मल बाहर निकल जाते हैं।
2. फेफड़े व हृदय रोगों जैसे श्वास, दमा आदि में लाभ होता है।
3. घबड़ाहट आदि तमाम दोष शान्त हो जाते हैं।

दण्ड धौति

वमनधौति

2. **वमनधौति-** प्रातः काल अथवा भोजन करने के 3-4 घण्टे बाद गर्म नमकीन जल तब तक पीयें जब तक जल कंठ तक न भर जाय और जल पीने की गुंजायश बिल्कुल न रह जाय। फिर उकड़ूँ बैठ कर अथवा खड़े होकर थोड़ा सामने लगभग 120 अंश झुक कर दाहिने हाथ की दो अँगुलियों को जिह्वामूल में प्रविष्ट कर धीरे-धीरे रगड़ना चाहिए। नये अभ्यासी बायें हाथ से पेट को दबायें और दाहिने हाथ की अँगुलियों से छोटी जीभ पकड़ें। उदरस्थ सारा जल बाहर आ जायेगा। इससे आमाशय, अन्न- नली और गले की धुलाई हो जाती है। उच्च रक्तचाप वाले रोगी, वात रोगी, हृदय व फेफड़े के कमजोर रोगी को यह क्रिया नहीं करनी चाहिए। सामान्य साधक को सप्ताह में एक बार, पित्त एवं कफ के रोगी को सप्ताह में दो बार तथा दमा के रोगी को कुछ दिन तक नित्य करना चाहिए।

लाभ- इस से-

1. वात, पित्त एवं कफ से सम्बन्धित रोग दूर होते हैं।
2. अम्लपित्त, अल्सर, खट्टी डकार आदि विकार दूर होते हैं।
3. दमा तथा श्वासरोग में आराम पहुँचता है।

3. **वसनधौति अथवा वस्त्रधौति-** प्रातः काल भोजन करने के पूर्व 5-6 सेमी० चौड़ा 8 मी० लम्बा महीन से महीन नया कपड़ा गोल लपेट कर नमकीन गरम जल में भिगोकर एक बर्तन में रख दें। कपड़े के एक सिर को मुंह में डालकर लार से अच्छी तरह मिलाकर धीरे-धीरे निगलें। प्रथम दिन एक फुट, दूसरे दिन दो फुट और तीसरे दिन तीन फुट वस्त्र अन्दर ले जायें क्रमशः अभ्यास बढ़ावें। ध्यान रहे कि एक-दो फूट वस्त्र बाहर दाँत से पकड़ कर रखें। वस्त्र अन्दर जाने पर नौलि क्रिया करें। फिर धीरे-धीरे वस्त्र को बाहर निकालें। अगर कठिनाई हो तो जल की मदद से निकालें। ध्यान रहे वस्त्र को 10-15 मिनट से ज्यादा अन्दर नहीं रखना चाहिए। यह क्रिया भोजन के पूर्व करनी चाहिए और क्रिया के एक घण्टे के बाद भोजन या नाश्ते में गाय के घी का अधिक से अधिक प्रयोग करें।

लाभ- इस से-

1. गुल्म, ज्वर, प्लीहा, कुष्ठ एवं कफ, पित्त आदि विकारों का शमन होता है।
2. हृदय-शोधन की क्रिया होने से यह मन की एकाग्रता में सहयोगी है।

वस्त्र धौति

3. दमा, श्वासरोग, कुष्ठरोग में लगातार इसका अभ्यास करें। अल्सर रोगी परामर्श लेकर ही करें। वस्त्र को बाहर निकालते समय वस्त्र के अन्तिम भाग में अम्ल अधिक होने पर गले में खरखराहट, जलन आदि होने का भय रहता है। अत: ऐसी स्थिति आने पर जल अधिक पियें।

मूल-शोधन (गणेश-क्रिया)

अपानवायु को कुपित होने से रोकने के लिये, मलावरोध आदि के निवारण के लिये जिस क्रिया का उपयोग किया जाता है उसे मूल-शोधन अथवा गणेश-क्रिया कहते हैं। इस क्रिया में कच्ची मूली की जड़ अथवा हल्दी की जड़ के चूर्ण को जल में मिलाकर मध्यमा अँगुली से गुदा मार्ग की सफाई जल के साथ की जाती है। हल्दी रक्त शोधक होने के कारण लाभदायक है।

लाभ- इस से-

1. जठराग्नि प्रदीप्त होती है।
2. बवासीर (अर्शरोग) में लाभ होता है।
3. आमजनित या कफ एवं अजीर्ण जनित रोग उत्पन्न नहीं होते और शरीर की पुष्टि तथा कान्ति में वृद्धि होती है।
4. वीर्य दोष भी दूर होते हैं।

(2) वस्तिः

यह षट्कर्म के अन्तर्गत शरीर-शोधन की दूसरी क्रिया है। वस्ति शरीर में मूलाधार के समीप नाभि के नीचे वाले (पेडू) भाग को कहते हैं जहाँ मूत्राशय है और इस वस्ति प्रदेश की सफाई जिस क्रिया से होती है, उसे स्थान के कारण वस्ति कहते हैं। इस क्रिया को अंग्रेजी में एनिमा भी कहते हैं।

जलवस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्तिः स्याद् द्विविधास्मृता।
जलवस्तिर्जले कुर्यात् शुष्कवस्तिः सदा क्षितौ।।

अर्थात् वस्ति क्रिया दो प्रकार की होती है-

1. जलवस्ति जल में तथा 2. शुष्कवस्ति भूमि पर की जाती है। शुष्कवस्ति को पवन-वस्ति भी कहते हैं

1. **जलवस्ति-** एक चिकनी नली को गुदा में डालकर नौलि-कर्म की सहायता से वस्ति में जल को चढ़ाया और निकाला जाता है। इसके लिये एनिमा लेना अपेक्षाकृत आसान विधि है। इससे आँतो में जमा मल घुल कर पतला होकर निकल जाता है। जल चढ़ाने के पूर्व सिरिंज द्वारा गुदा में तेल चढ़ाना उपयोगी बताया गया है। एनिमा न उपलब्ध हो तो ग्लिसरीन की बत्ती चढ़ाने से भी मल तथा ऑव के निष्कासन में आसानी होती है। रोग के अनुसार वस्ति में तरह-तरह के क्वाथों (काढ़ों) को चढ़ाने की बात भी बतायी गयी है। परन्तु सामान्य रूप के कवोष्ण (गुनगुने) जल में साबुन और लवण अथवा पोटैशियम परमैग्नेट मिला कर भी इस का अभ्यास किया जा सकता है।

विधि- किसी बड़े टब (बड़ा जलपात्र विशेष) में, किसी नदी या सरोवर में नाभि तक जल में उत्कटासन में बैठ कर गुदा मार्ग का आकुन्चन और प्रसारण (सिकोड़ने-फैलाने की क्रिया) करें। नली अथवा सिरिंज द्वारा जल अन्दर चढ़ा कर मूलबन्ध वस्ति प्रदेश को नौलि क्रिया द्वारा चालित कर भीतर चढ़ाये गये जल को बाहर निकाल सफाई का यह काम किया जाता है।

लाभ- इस से-

इसके करने से गुल्म, प्लीहा, उदर-रोग तथा वात, पित्त और कफ का दूषित रूप में बनना नष्ट हो जाता है।

2. **स्थल-वस्ति-** जमीन पर पश्चिमोत्तान आसन में बैठकर आश्वनी मुद्रा के द्वारा गुदा का आकुंचन और प्रसारण करने की क्रिया स्थलवस्ति कहलाती है।

लाभ- इससे-

1. कब्ज दूर होता है।
2. गठिया आदि रोग दूर होते हैं।
3. जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

सावधानी-

1. नौलि क्रिया तथा स्थलवस्ति के ठीक अभ्यास के बाद ही जलवस्ति का अभ्यास करना चाहिए। अन्यथा उदर में प्रविष्ट हुआ सम्पूर्ण जल बाहर नहीं आ पायेगा और उसके बाहर न आने से धातुक्षय आदि नाना दोष होने की सम्भावना रहती है।

2. जलवस्ति के तुरन्त बाद भोजन अवश्य करें जिससे वृहद् आंत्र में बचा हुआ जल का अंश धीरे-धीरे मूत्र द्वारा बाहर आ जायेगा। भोजन नहीं करने की स्थिति में दूषित जल आँतो से सम्बद्ध सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा शोषित रक्त में मिल जायेगा और रक्त को दूषित करेगा।

3. जलवस्ति के लिये शुद्ध जल का ही प्रयोग करना चाहिए। अधिक गरम जल तथा अधिक शीतल जल का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

4. राजयक्ष्मा (क्षय), संग्रहणी, अधोरक्तपित्त, भगन्दर, मलाशय और गुदा में शोथ, आंत्र सन्निपात, कफ-वृद्धि जनित तीक्ष्ण श्वास प्रकोप में वस्ति क्रिया नहीं करनी चाहिए।

(3) नेति

विभिन्न द्रव पदार्थों द्वारा नासिका मार्ग की सफाई करने की क्रिया को नेति कहते हैं। यह षट्कर्म की तीसरी क्रिया है। यह नाक, कान, कण्ठ और मस्तिष्क से सम्बन्धित रोगों में लाभदायक है। जलनेति, सूत्रनेति, दूग्धनेति, तेल या घृतनेति आदि भेद से यह अनेक प्रकार की होती है।

1. **जलनेति-** गुनगुने जल में आवश्यकतानुसार नमक मिलाकर एक टोंटीनुमा लोटे में जल भर कर सिर को थोड़ा झुका कर ऊपर वाली नासिका में लोटे की टोंटी को लगाकर जल डालते हैं। जल दूसरी नासिका से अपने आप बाहर आ जायेगा। इस क्रिया मे यह ध्यान विशेष रूप से रहे कि श्वास नासिका से न लेकर थोड़ा मुंह खोलकर रखें, ताकि आवश्यकतानुसार श्वास अन्दर बाहर हो सके। इसी क्रिया को क्रमशः दूसरी नासिका से भी करते हैं। इसके बाद भस्त्रिका नेति अवश्य करें।

लाभ- यह-

1. आँख, कान, नाक, गला, दाँत एवं मस्तिष्क से सम्बन्धित रोगों को दूर करता है।
2. चर्मरोग में लाभ पहुँचाता है।
3. मानसिक तनावों को दूर करता है।
4. सिरदर्द, खाँसी, जुकाम नजला (सर्दी), नाक में फोड़े, फुंसी आदि में लाभ पहुँचाता है।
5. सुषुम्णा नाड़ी को जाग्रत करता है।

सावधानी-

1. नये अभ्यासियों को शुरू में ही शीतल जल प्रयोग नहीं करना चाहिए। शुरू में ही शीतल जल का प्रयोग करने से सर्दी, जुकाम, सिर का भारीपन इत्यादि कष्ट हो जाते हैं।

2. नजला, जुकाम होने पर नमकीन गरम जल से ही नेति क्रिया करनी चाहिए।

3. जलनेति के बाद भस्त्रिका-नेति अवश्य करनी चाहिए अन्यथा कालान्तर में जल वाष्प बनकर फेफड़े में प्लुरिसी आदि रोग उत्पन्न कर सकता है।

जलनेति

सूत्रनेति

2. सूत्रनेति-

मुलायम धागे की रस्सी या रबर की कैथेटर नं० 4 को गरम जल से धोकर धीरे-धीरे एक नासिका छिद्र में डालकर गले के पास आने पर दायें हाथ की दो अँगुलियों से कैथेटर या सूत्र को मुंह से धीरे-धीरे बाहर निकाल कर सूत्र या कैथेटर के एक-एक कोने को दोनों हाथों से पकड़ कर 8-10 बार अन्दर बाहर करके धीरे-धीरे मुंह से बाहर निकाल लेना चाहिए। इसके बाद घृतनेति अवश्य करनी चाहिए।

लाभ- यह-

1. सिरदर्द, खाँसी, जुकाम, नाक में फोड़े-फुंसी आदि में लाभ पहुँचाता है।
2. नाक के अन्दर मांस वृद्धि को रोककर नाक को खोलता है।

3. *घृतनेति/कपालनेति-*

किसी आसन पर बैठकर अथवा कुर्सी पर बैठकर अथवा चारपाई पर लेटकर सिर को पीछे लटका कर ड्रापर द्वारा बारी-बारी से प्रत्येक नासिका छिद्र से 8-10 बूँद ताजा गाय का घृत डालने की क्रिया को घृतनेति कहते हैं। यही क्रिया तेल से करने पर तेलनेति, दुग्ध से करने पर दुग्धनेति कहलाती है अथवा नासिका से दुग्धपान करना ही दुग्धनेति कहलाती है। मुंह में पानी भर कर नासिका के छिद्रों से निकलने की विधि को कपालनेति कहते हैं।

लाभ- इस से-

1. आँख, नाक, कान, गला एवं मस्तिष्क के सभी रोगों में लाभ पहुँचाता है।
2. सिर दर्द, खांसी, जुकाम, नाक में फोड़े-फुंसी को दूर करता है।
3. मिर्गी, चक्कर, स्मरणशक्ति की कमी आदि में लाभदायक है।
4. दुग्धनेति बालों की सुरक्षा में सहायक होती है। बाल सफेद नहीं होते हैं, झड़ते नहीं हैं।

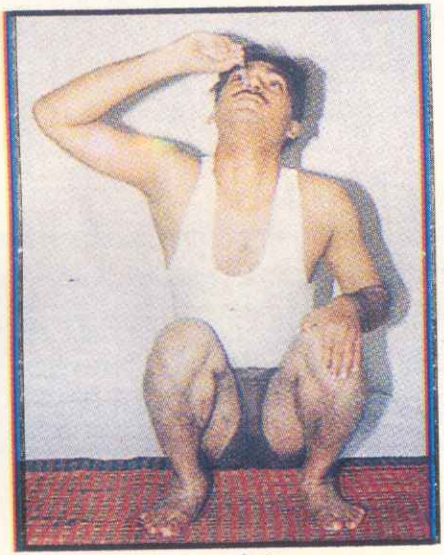

घृतनेति

(4) नौलिका या नौलि-क्रिया

हठयोग के षट्कर्मो की यह चतुर्थ तथा उत्तम क्रिया है। यह क्रिया उदर-रोगों को दूर करने में प्रभावकारी सिद्ध हुई है। सुगमता से करने के लिये इसे छः भागों में बाँटा जा सकता है। सबसे पहले सीधे खड़े होकर दोनों पैरों के बीच डेढ़-दो फुट का अन्तर रखें। धड़ को थोड़ा सामने झुका कर दोनों हाथों को घुटने से ऊपर बाँध कर रखना चाहिए।

अग्निसारक्रिया

वज्रासन में बैठकर दोनो घुटनों के बीच दूरी बढ़ा कर दोनो हाथों की हथेलियों को पेट की ओर उल्टा कर के दोनो घुटनों के बीच रखें। जालन्धर बन्ध लगाकर पेट को अधिक से अधिक क्रमशः पिचकायें-फैलायें (फुलायें) अर्थात् नाभि प्रदेश का आकुंचन और प्रसारण जल्दी-जल्दी करें। यह क्रिया जितनी देर आसानी से कर सकते हैं करें तत् पश्चात् श्वास लें।

लाभ- इस से -

1. उदर की मांसपेशियों को लचीली बनाती हैं तथा इससे मांसपेशियों व नसनाड़ियों पर नियंत्रण प्राप्त होता है।
2. उदर सम्बन्धी विकारों को दूर कर पाचन-शक्ति बढ़ाती है।

उड्डीयानबन्ध

सीधे खड़े होकर दोनों पैरों के बीच एक-डेढ़ फुट का फासला रखें आगे झुकते हुये दोनों हाथों को घुटनों के ऊपर जाँघ पर रखकर रेचक करके श्वास बाहर निकालें और बहिष्कुम्भक करें। पेट को अन्दर की ओर इतना खींचें कि पीठ से सट सा जाय। जितनी देर रुक सकते हैं, रुकने के बाद धीरे-धीरे पेट को ढीला छोड़ने पर श्वास धीरे-धीरे लें।

लाभ- इस से -

1. आँतों के रोगों में लाभ पहुँचाता है।
2. कब्ज तथा गैस्टिक को दूर करता है।

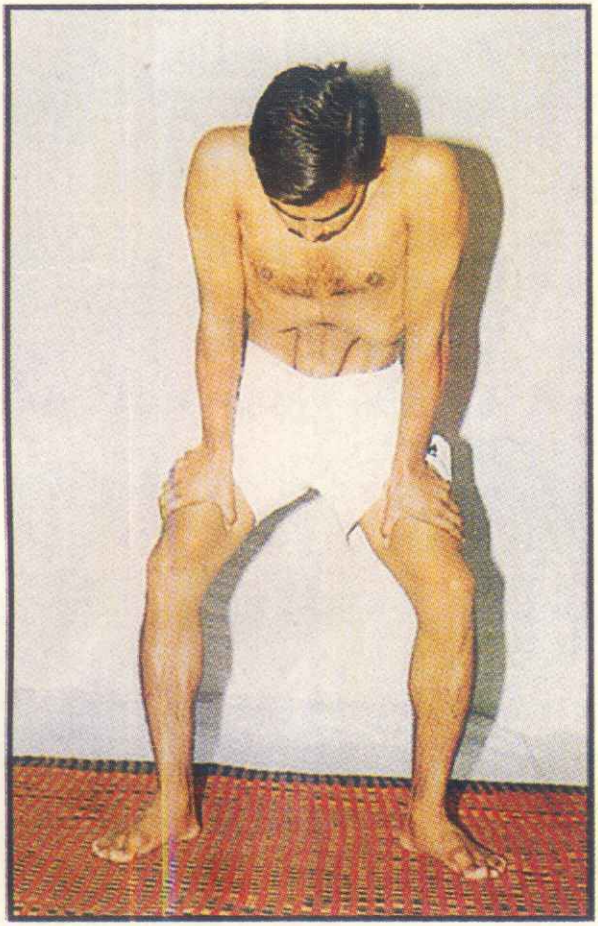

नौलिकी

मध्य-नौलि

उड्डीयानबन्ध के अभ्यास के बाद पेट के मध्य मांसपेशियों की नाल जैसी शक्ल उभरती है। इसे मध्य- नौलि कहते हैं।

दक्षिण-नौलि

इसी नौलि को बायें हाथ के दबाव को कम करके पेट के दाहिनी ओर निकालना दक्षिण-नौलि कहलाती है।

वाम-नौलि

मध्य-नौलि को दाहिने हाथ के दबाव को कम करके बायीं ओर निकालने की क्रिया को वाम-नौलि कहते हैं।

चक्र-नौलि

नौलि को बायें से दायें और दायें से बायें वर्तुलाकार घुमाने की क्रिया को चक्र-नौलि कहते हैं।

लाभ- इस से-

1. उदर सम्बन्धी वात, तिल्ली, मंदाग्नि, आमवात, पेट का कड़ापन, कब्ज आदि रोग दूर करती है।
2. आँतों को सक्रिय स्वस्थ एवं मजबूत बनाने की उत्तम क्रिया है।
3. प्राण-अपान वायु का योग कराने वाली कुण्डलिनी-योग की महत्त्वपूर्ण क्रिया है।

सावधानी

1. पेट के अल्सर, शल्य-क्रिया, गर्भकाल और उपवास में इस क्रिया का अभ्यास वर्जित है।
2. अभ्यास प्रातः काल खाली पेट षट्कर्म की अन्य क्रियाओं से पूर्व करना चाहिए।

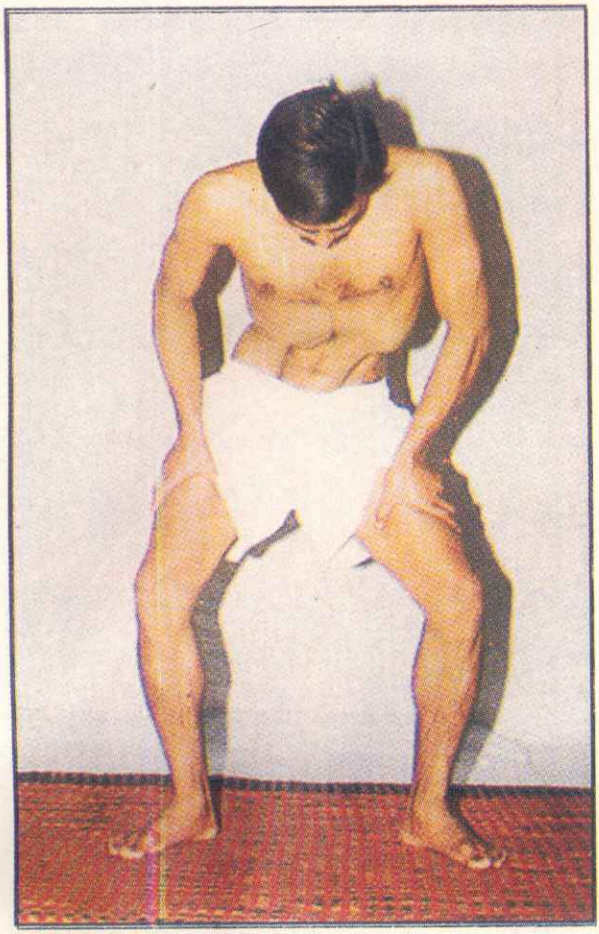

दक्षिण-नौलि

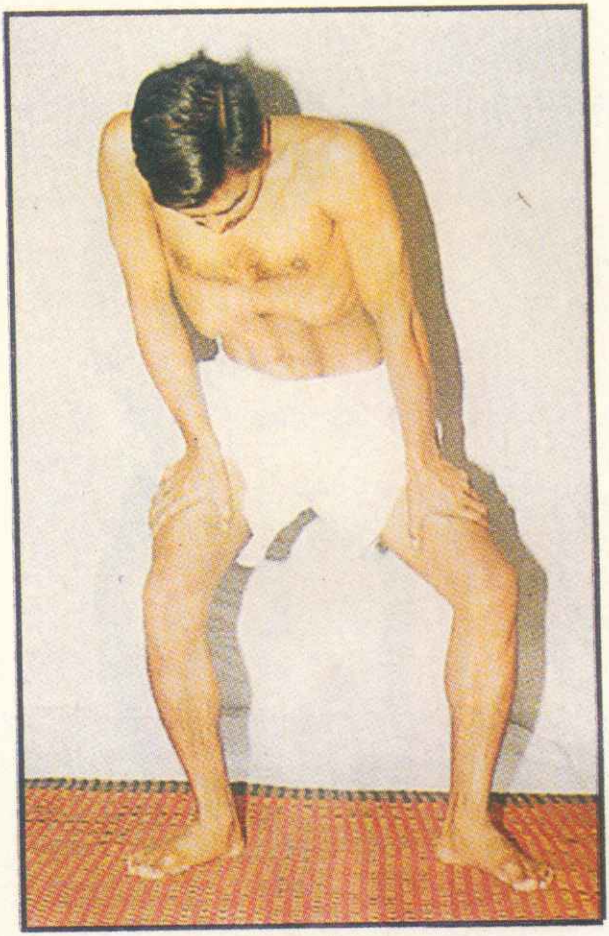

वाम-नौलि

चक्र-नौलि

(5) त्राटक

किसी लक्ष्य विशेष को एकाग्रता के साथ अपलक देखने की क्रिया को त्राटक कहते हैं। यथा-

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्म-लक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पात-पर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।।

त्राटक क्रिया तीन प्रकार की होती है-

1. अन्तः त्राटक
2. मध्य त्राटक
3. बाह्य त्राटक

अन्तः त्राटक

हृदय अथवा भ्रूमध्य में नेत्र बन्द रख कर एकाग्रता पूर्वक धारणा शक्ति को बढ़ाने की क्रिया को अन्तः त्राटक कहते हैं। भ्रूमध्य में त्राटक करने से आरम्भ में कुछ दिनों तक कपाल में दर्द तथा नेत्रो की बरौनियो में चंचलता की शिकायत हो सकती है। परन्तु कुछ दिनों के अभ्यास के बाद नेत्रवृत्ति में स्थिरता आ जाती है।

मध्य त्राटक

जब त्राटक क्रिया का अभ्यास देवमूर्ति, सफेद कागज में काला बिन्दु अथवा ऊँ, मोमबत्ती अथवा तिल के तेल की अचल बत्ती अथवा धातु की मूर्ति, नासिका के अग्रभाग या समीपवर्ती किसी अन्य लक्ष्य पर दृष्टि रखकर की जाती है तब उसे मध्य-त्राटक कहते हैं। इस क्रिया को करने के लिये किसी भी आसन (पद्मासन, सिद्धासन या स्वस्तिकासन) में बैठकर एक डेढ़ फुट की दूर पर आँखों के ठीक सामने किसी स्टैण्ड में एक दीपक (तिल के तेल आदि से युक्त) रखते हैं। अपलक नेत्रों से दीपक की लौ को तब तक देखते हैं जब तक आसानी से देख सकें। आँखों से आँसू आने पर आँखें बन्द करके दीपक की लौ को भ्रूमध्य में धारण करें। कुछ देर बाद पुनः इस क्रिया को दुहरायें। धीरे-धीरे अभ्यासकाल बढ़ाते जायें। यह

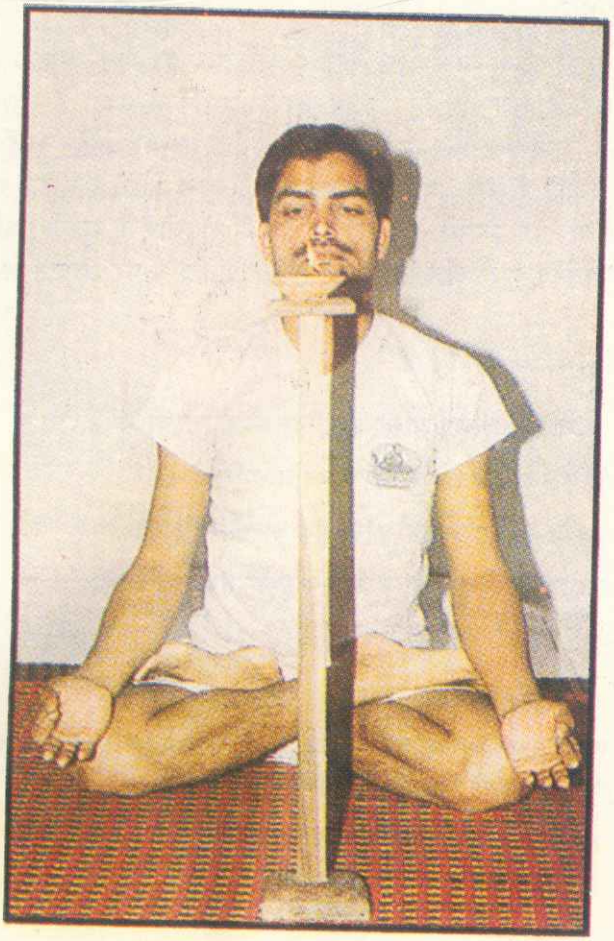

त्राटक

क्रिया देवमूर्ति, सफेद कागज पर काला बिन्दु अथवा ऊँ आदि समीपवर्ती लक्ष्य पर भी की जा सकती है।

बाह्य त्राटक

जब त्राटक क्रिया का अभ्यास किसी दूरवर्ती लक्ष्य पर यथा-चन्द्र, प्रकाशित नक्षत्र, पर्वत के तृणाच्छादित शिखर आदि पर किया जाता है, तब उसे बाह्यत्राटक कहते हैं। केवल सूर्य पर त्राटक नहीं करना चाहिए क्योंकि सूर्य और नेत्र ज्योति में एक ही प्रकार की शक्ति होने से नेत्र-शक्ति सूर्य में आकर्षित होती रहेगी जिससे नेत्र कुछ ही दिनों में कमजोर हो जायेंगे। यदि सूर्य पर त्राटक करना हो तो जल में पड़े हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब पर अभ्यास किया जा सकता है।

लाभ- इस से-

1. स्मरण-शक्ति, धारणा-शक्ति, अतीन्द्रिय क्षमता को बढ़ाता है।
2. मन की हलचल को शान्त, स्थिर तथा अन्तर्मुख करता है।
3. दिव्य-दृष्टि तथा सम्मोहन-शक्ति पैदा करने में सहायक है।
4. उच्च आध्यात्मिक क्रियाओं के लिये पृष्ठभूमि तैयार करता है।
5. शाम्भवी-मुद्रा की सिद्धि में सहायक है।

सावधानी

1. त्राटक क्रिया का अभ्यास करते समय आसन एकदम स्थिर हो तथा शरीर में किसी भी प्रकार की हलचल नहीं होनी चाहिए।
2. त्राटक क्रिया के बाद नेत्र और मस्तिष्क में उष्णता बढ़ जाती है इसलिये इस क्रिया के बाद जलनेति करनी चाहिए।

त्राटक के अधिकारी

1. जिस साधक की पित्त प्रकृति हो, जिसके मस्तिष्क, नेत्र, नासिका या हृदय में दाह रहता है वह केवल अन्त: त्राटक का अधिकारी है।
2. जिनकी दृष्टि दूर की वस्तुओं के लिये कमजोर हो, जिनकी वातप्रधान प्रकृति

हो या जिन्हें शुक्र की निर्बलता हो, वे बाह्य त्राटक का अधिकारी है।

3. जिनकी दृष्टि दोष-रहित हो, त्रिधातु सम हो, कफ-प्रधान प्रकृति हो, नेत्रों की ज्योति पूर्ण हो, वे मध्य त्राटक के अधिकारी हैं।

विशेष

अम्लपित्त, जीर्णज्वर, विषमज्वर, मज्जातन्तु-विकृति, पित्ताशय-विकृति इत्यादि किसी रोग से पीड़ित अथवा तम्बाकू, गाँजा आदि के व्यसनी को त्राटक-क्रिया का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

(6) कपालभाति :

वृहत् मस्तिष्क के सामने के हिस्से को कपाल कहते हैं। भाति यानी धौंकनी, अर्थात् मस्तिष्क के समस्त विकारों को दूर कर प्राण शक्ति द्वारा कपाल का शोधन जिस क्रिया से होता है, उसे कपालभाति कहते हैं।

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः।

कपालभातिस्त्रिधाकुर्यात् कफदोषं निवारयेत्।।

वातक्रम (कपालभाति), व्युत्क्रम (कपालभाति) और शीतक्रम (कपालभाति) के भेद से कपाल भाति तीन प्रकार की होती है। इसकी साधना करने से कफ से उत्पन्न विकारों का निवारण होता है।

(1) वातक्रम कपालभाति

इड़ा नाड़ी (बायीं नासिका) मे वायु भर कर पिंगलानाड़ी (दाहिनी नासिका) से बाहर निकाल दें। इड़ा नाड़ी बायीं नासिका में और पिंगला दायीं नासिका में होती है। इड़ा नाड़ी तमोगुण-प्रधान तथा पिंगला रजोगुण-प्रधान होती है तथा पिंगला नाड़ी से वायु खींच कर इड़ा नाड़ी से निकालने की अनुलोम-विलोम क्रिया को वातक्रम कपालभाति कहते हैं।

लाभ- इस से-

1. कफ-दोष का निवारण होता है।
2. मन एकाग्र होता है।

(2) व्युत्क्रम कपालभाति

दोनों नासा छिद्रों से जल खींच कर मुख-द्वार से बाहर निकालने और मुख से जल खींच कर इस नाड़ी से निकालने की इस व्युत्क्रम-क्रिया को व्युत्क्रम-कपालभाति कहते हैं।

लाभ- यह कंठ, मुख और नासा छिद्रों को शुद्ध करने में अत्यन्त उपयोगी है

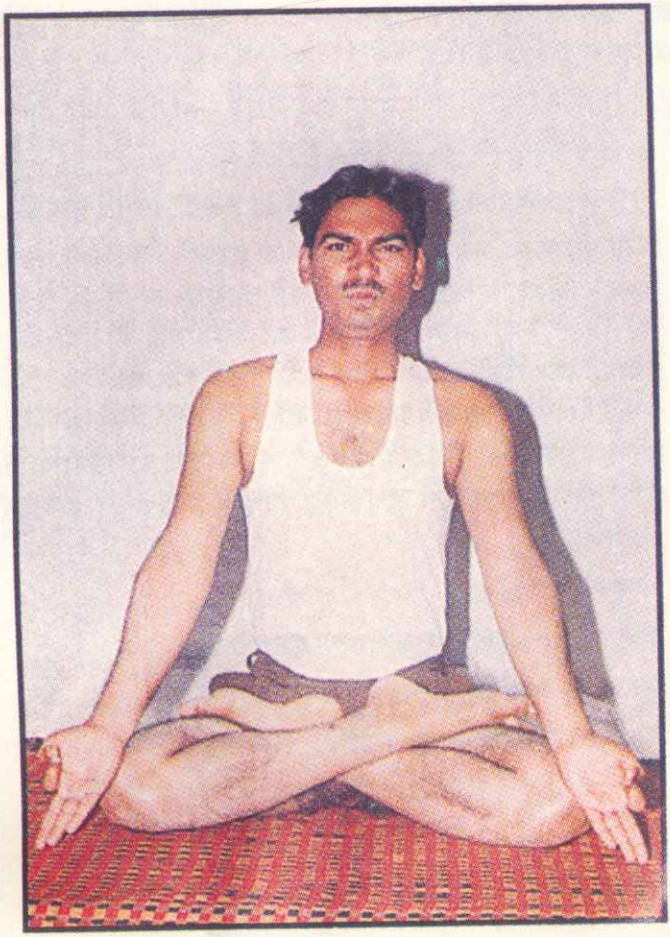

कपालभाति

(3) शीतक्रम कपालभाति

मुख के द्वारा जल खींच कर नासिका के द्वारा निकालने की क्रिया को शीतक्रम- कपालभाति कहते हैं। धीरे-धीरे उचित निर्देशन में ही इन क्रियाओं का अभ्यास करना हितकर है।

लाभ-

यह चेहरे पर झुर्री आदि दूर करके सुन्दरता में वृद्धि करती है। कपालभाति की उपर्युक्त क्रियाओं के अतिरिक्त सबसे सरल तथा उपयोगी क्रिया है

किसी भी आसन (पद्मासन, सुखासन या वज्रासन) में बैठकर हाथ घुटने पर रखकर नासिका से श्वास खींचकर झटके के साथ कई हिस्सों में विभाजित करते हुए छोड़ते हैं। अन्तिम बार दीर्घ प्रश्वास से फेफड़े की पूरी वायु बाहर निकाल देते हैं फिर तीनों बन्ध लगाकर (सबसे पहले जालन्धर बन्ध, उसके बाद मूललबन्ध, उसके पश्चात् उडिड्यानबन्ध लगाकर) तथा छोड़ने के लिये सबसे पहले उडिड्यानबन्ध फिर मूलबन्ध और अन्त में जालन्धर बन्ध छोड़ना चाहिए। बहिष्कुम्भक भी करना चाहिए। इस क्रिया का अभ्यास प्राणायाम के बाद खाली पेट ही करना चाहिए।

लाभ - यह-

1. श्वास-रोग, तपेदिक, दमा आदि में लाभकारी है।
2. सिर-दर्द तथा मस्तिष्क सम्बन्धी रोग दूर करता है।
3. फेफड़े की शुद्धि करके रक्त-शोधन, मस्तिष्क के विकास और मन की चंचलता आदि दूर करता है।

षट्कर्म योगाभ्यास के क्षेत्र में नि:सन्देह अत्यन्त आवश्यक अंग है। इनके सम्यक् और विधि पूर्वक अभ्यास से आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के साधन से कायाशोधन होने पर सुषुम्णा में अपान-प्राण के प्रवेश से षट्चक्र प्राणित होते हैं, मूलाधार में सोयी कुण्डलिनी जाग जाती है और षट्चक्रों को मुद्राबन्ध के अभ्यास के सहारे भेदन करती हुई शरीर में नव प्राण-शक्ति भरती

हुई सहस्रार में परब्रह्म अलखनिरंजन शिव से सामरस्य स्थापित कर तत् स्वरूप हो जाती है।

शरीर में त्रिधातु सम होने पर षट्कर्म नहीं करना चाहिए। शरीर-शुद्धि के लिये अथवा इन क्रियाओं पर अधिकार रखने के लिये प्रारम्भ में कुछ समय तक अभ्यास किया जा सकता है जिससे भविष्य में देशकाल-परिवर्तन, प्रमाद या आहार-विहार से वातादि धातुओं के विकृत हो जाने पर इन क्रियाओं द्वारा इनका शमन किया जा सकता है। परन्तु आवश्यकता न होने पर नित्य करते रहने से समय का अपव्यय, शारीरिक निर्बलता और मानसिक प्रगति में शिथिलता आ जाती है। इसलिए षट्कर्म आवश्यकतानुसार तथा आवश्यक सावधानी के साथ ही करना चाहिए। अतः इसे किसी जानकार व्यक्ति या गुरु के निर्देशन में करना ही निरापद एवं उचित है।

संक्षिप्त–षट्कर्म–विज्ञानम्

(हठयोग–प्रदीपिकानुसारम्)

मेदः श्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत्।

अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः।।१।।

जिस साधक में मेद (चर्बी) और श्लेष्मा (कफ) की अधिकता हो उसे प्राणायाम के अभ्यास से पूर्व षट्कर्मों (धौति, वस्ति आदि वक्ष्यमाण) की साधना करनी चाहिए। किन्तु जिस साधक में कफ, वात और पित्त समभाव में हों, अधिक न हों, उसे इन षट्कर्मों को नहीं करना चाहिए।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।।२।।

धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलिक तथा कपालभाति ये ही षट् (छः) कर्म कहे जाते हैं।

चतुरङ्गुलविस्तारं हस्त पञ्चदशायतम्।

गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं पुनर्ग्रसत्।

पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौति-कर्म तत्।।३।।

चार अंगुल चौड़े और पन्द्रह हाथ लम्बे वस्त्र को जल में अच्छी तरह भिगोकर गुरू द्वारा बताये गये तरीके से साधक को धीरे-धीरे मुख से निगल कर फिर उसे धीरे-धीरे बाहर निकालें यही धौति कर्म कहलाता है।

कास-श्वास-प्लीह-कुष्ठं कफ रोगाश्च विंशतिः।

धौति-कर्म-प्रभावेण प्रयान्त्येव न संशयः।।४।।

धौति कर्म के प्रभाव से श्वास, खाँसी, प्लीहा (तिल्ली) और कुष्ठ तथा बीस प्रकार के कफजन्य रोग दूर हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

नाभि-दघ्न-जले पायौ न्यस्त-नालोत्कटासनः।

आधाराकुञ्चनं कुर्यात् क्षालनं वस्तिकर्म तत्।।५।।

नाभि तक जल में स्थित होकर (कनिष्ठका अंगुली के प्रवेश योग्य) छेद वाली बाँस की नली गुदा मार्ग में प्रविष्ट कर उत्कटासन में स्थित होकर गुदा आकुंचन (सिकोड़ना) करना चाहिए, इस प्रकार पेट में जल का संचालन कर उसे धोना चाहिए, यही वस्ति कर्म है।

गुल्म-प्लीहोदरं चापि वात-पित्त-कफोद्भवा:।

वस्ति-कर्म-प्रभावेण क्षीयन्ते सकलाम्या:।। ६।।

वस्ति कर्म के प्रभाव से गुल्म, प्लीहा, जलोदर तथा वात-पित्त-कफ-त्रिदोषों से उत्पन्न होने वाले नाना रोग नष्ट हो जाते हैं।

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासा-नाले प्रवेशयेत्।

मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेति: सिद्धैर्निगद्यते।। ७।।

अच्छी तरह चिकना एक बित्ता भर लम्बा डोरा लेकर नाक की छेद में डाल कर मुख के रास्ते निकालना चाहिए। योगसिद्धों ने इसी को नेति कहा है।

कपाल-शोधिनी चैव दिव्य-दृष्टि-प्रदायिनी।

जत्रूर्ध्वजात-रोगौघं नेतिराशु निहन्ति च।। ८।।

नेति क्रिया कपाल के विकारों का शोधन करती है, दिव्य-दृष्टि प्रदान करती है तथा कन्धे से ऊपर के तमाम रोगों को शीघ्र नष्ट करती है।

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्म लक्ष्यं समाहित:।

अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।। ९।।

एकाग्रचित होकर अपलक दृष्टि से किसी सूक्ष्म लक्ष्यभूत पदार्थ को आँसू निकल आने तक देखना त्राटक कहलाता है।

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्।

यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम्।। १०।।

त्राटक कर्म नेत्र के रोगों से छुटकारा देता है, तन्द्रा और आलस्य को ओने नहीं देता और सोने की पिटारी की तरह गोपनीय है।

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यत: ।

नतांसो भ्रामयेदेषा नौलि: सिद्धै: प्रशस्यते ।। ११ ।।

कन्धा सामने की ओर झुकाकर पेट को दाहिनी-बायों ओर तेज आवर्त (जल में उठने वाली भ्रमर) की गति से घुमाने की क्रिया को सिद्धों ने नौलि कहा है।

मन्दाग्नि-सन्दीपन-पाचनादि सन्धायिकानन्दकरी सदैव।

अशेषदोषामयशोषणी च हठक्रिया मौलिरियं च नौलि: ।। १२ ।।

नौलि क्रिया मन्दाग्नि को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली, पाचनशक्ति बढ़ाने वाली तथा आनन्द देने वाली है। यह हठक्रिया में मूर्धन्य मानी जाती है।

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेच-पूरौ ससंभ्रमौ।

कपाल भातिर्विख्याता कफ दोष विशोषिणी ।। १३ ।।

लोहार की भाथी-धौंकनी के चलने के समान वेगपूर्वक रेचक और पूरक प्राणायाम करना ही कपालभाति है। इससे कफ जनित विकार दूर होते हैं।

षट् कर्मनिर्गतस्थौल्य-कफदोष-मलादि्क: ।

प्राणायामं तत: कुर्यादनायासेन सिद्ध्यति ।। १४ ।।

षट् कर्म के अभ्यास से शरीर की स्थूलता तथा कफ दोष आदि मलों से मुक्त होकर ही प्राणायाम करना चाहिए। इससे बड़ी आसानी से योग साधना में सिद्धि मिलती है।

।। इति षट्कर्म विज्ञानम् ।।

श्री गोरक्षनाथ मन्दिर, गोरखपुर